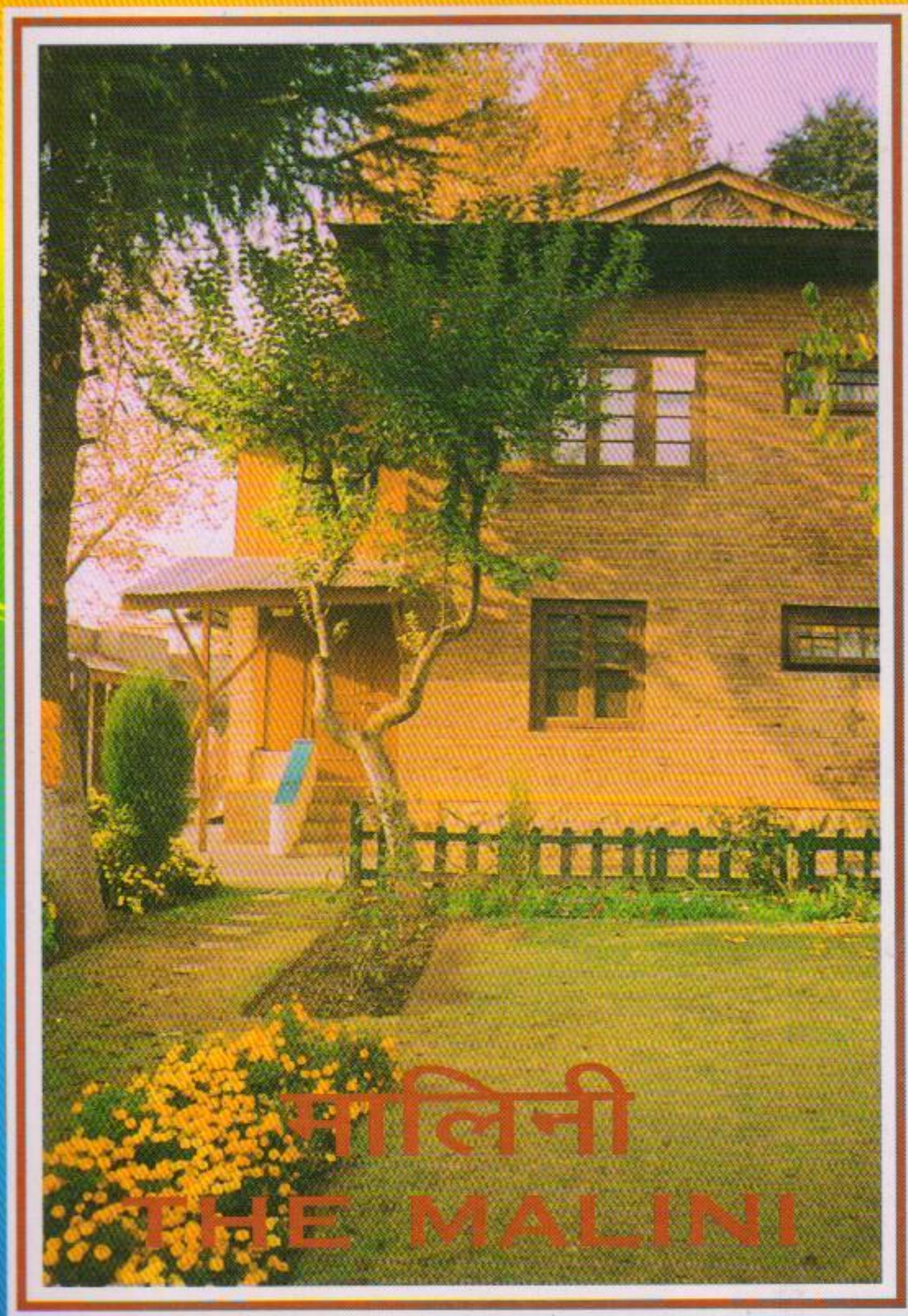


JULY, 2002



ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR



मालिनी THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।

भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

*Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union
with her all the treatises of non-dualistic
order achieve the nature of divine potency.*

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :

Sri Inderkrishan Raina

(Secretary/Trustee)

Sri Samvit Prakash Dhar

Sri Brijnath Kaul

Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :

Sushri Prabhadevi

Prof. Nilakanth Gurtoo

Prof. Makhanlal Kukiloo

Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan

(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :

Ishwar Ashram Trust

Ishber (Nishat), Srinagar

Kashmir.

Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180 002.

Tel. : 553179, 555755

Branch Office :

R-5/D Pocket, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044

Tel. : 6958308

Telefax : 6974977

July, 2002

Price : Rs. 25.00

Yearly subscription : Rs. 100.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust

by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

विषय सूची : Contents

| | | |
|---|---|----|
| संपादक की लेखनी से | | 4 |
| 1. Śiva Sūtras | Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Māharāja | 6 |
| 2. A Surprising Situation | Pt. Jankinath Kaul "Kamal" | 13 |
| 3. Shaivism, Human Brain & Pañcastavi | Triloki Nath Dhar | 18 |
| 4. Message of All Kendras of Ishwar Ashram Trust, Kashmir | | 21 |
| 5. विज्ञानभैरव - समीक्षात्मक अध्ययन | ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजी म० | 22 |
| 6. (नमः संवित् वपुषे) शैवीसाधना के दर्पण में—अभ्यास | सुश्री प्रभादेवी जी | 26 |
| 7. श्रीतन्त्रालोकविवेके श्रीजयरथाचार्यपादैः | प्रो.मखनलाल कुकिलू | 29 |
| 8. शैवदर्शन के वातायन से | प्रो. नीलकंठ गुर्दू | 33 |
| 9. मेधा की महिमा | प्रो० मखनलाल कुकिलू | 34 |
| 10. From Ashram Desk | Administrative Office | 37 |

संपादक की लेखनी से

मालिनी का यह अंक पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए हमें अनन्त प्रसन्नता हो रही है। सद्गुरु महाराज की जन्मजयन्ती पर प्रकाशित विशेष अंक की विविधा को पाठकों ने मुक्त कण्ठ से सराहा जिससे हमें उचित प्रोत्साहन मिला। पर हमारा पाठक वृन्द प्रायः इस बात पर असंतोष व्यक्त कर रहा है कि साधारण पाठक मालिनी के गुणों से वंचित रहता है क्योंकि भाषा का बन्धन उन्हें आगे बढ़ने नहीं देता। सहृदय पाठकों से निवेदन है कि हम इस बात का भरसक प्रयत्न करेंगे कि भाषा का बन्धन हमारे बीच दीवार न बने। वास्तव में पाठकगण इस बात से परिचित हैं कि मालिनी पत्रिका अपने ढंग की अनूठी पत्रिका है। इसमें आधुनिक मनोरंजक विषयों के लिए कोई स्थान नहीं है। इसमें कहानी, कविता, नाटक, व्यंग्य लेख परिचर्चा आदि साहित्य की नई विधाओं को छुआ भी नहीं जा सकता क्योंकि इसका तानाबाना दार्शनिकता के रंग से रंगा हुआ है। दार्शनिकता का पुट भी ऐसा गहरा है कि निम्नतल तक जाने बिना कोई इसकी गहराई का अनुभव नहीं कर सकता। यह हमारे सद्गुरु ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मणजी महाराज की वह देन है जो हजारों सालों के लिए अजर और अमर है। यह समय सीमा से परे है। देश और आकार का भी प्रभाव इसे प्रभावित नहीं कर सकता। तांत्रिक हो या मांत्रिक हो, राजनीतिज्ञ हो या समाजसेवी हो, सत्ताधारी हो या कर्मकर हो, निर्धन हो या धनवान हो, देशप्रेमी हो या देशद्रोही हो, स्वतन्त्र हो या परतंत्र हो सबों के लिए इसका मधुर पेय जल तृष्णापूर्ति के लिए कुछ-न-कुछ सहायक सिद्ध होगा। हमारे सद्गुरु महाराज ने इसे एक ऐसे सांचे में डाला है जहां इसकी अवयव संरचना की ओर कोई आंख तक नहीं उठा सकता। इस तथ्य को ध्यान में रखकर हमसे जो कुछ संभव हो सकता है या संभव होगा उसमें हम किसी प्रकार की आनाकानी नहीं करेंगे। आप लोगों का सौहार्दपूर्ण साथ ही हमारे लिए विशेष संबल है। आपने सद्गुरु महाराज की यश पताका को यदि हम देश के कोने-कोने में फैलाने के इच्छुक हैं तो उसके लिए साहित्य साधना ही सक्षम है। कलम की महिमा अपार है। लेखनी के माध्यम से हम उन छोरों तक जा सकते हैं जहां पहुंचना सांसारिक भोग विलासों तथा खान पान के तुष्टिप्रद साधनों के लिए असंभव है। कई एकान्त सेवी हमारे मालिनी प्रकाशन प्रयासों को व्यर्थ और ट्रस्ट के लिए अवांछित आर्थिक वेताल समझते हैं पर उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी सोच में परिवर्तन लायें और इस तथ्य को मन में धर लें कि भवननिर्माणों और भण्डारों से वे अपने सद्गुरु महाराज के भव्य संदेशों को जनमानस में उकेर नहीं सकेंगे। जनमानस को उत्ताल तरंगों से देलायमान करने में यदि

किसी में क्षमता है तो वह सद्गुरु महाराज की रचनाओं तथा उनके प्रभावशाली प्रवचनों को ही। अतः जनता के घर-घर तक उन्हें पहुंचाने के लिए कटिबद्ध हमें रहना है और इसी बात को जीवन का परमध्येय मानना है।

जय गुरुदेव !

इस बात से आप परिचित हैं कि कई अवांछित आग्रहों के कारण निर्माण सरिता विहार दिल्ली का ईश्वर आश्रम भवन अभी परिपूर्ण नहीं बना। निर्माण कार्य कई महीनों से स्थगित है। अनेक प्रकार की बाधाएँ राह घेरी हैं। आशा है कि सद्गुरु महाराज की विशेष कृपा कर्मकरों का करावलम्बन करके लक्ष्य तक पहुंचाने में सहायक होगी।

सद्गुरु प्रेमियों को यह पढ़कर अपार प्रसन्नता होगी कि ईश्वर आश्रम के तीनों केन्द्रों पर अब रविवासरीय पूजा के अन्त पर सद्गुरु महाराज के प्रवचनों के दृश्य और श्रव्य सी. डी. चलाये जाते हैं जिनके सुनने और देखने से असीम हार्दिक सन्तोष होता है। श्री देव जी मुन्शी और डा० अनुशील मुन्शी अतीव धन्यवाद के पात्र हैं कि उनके महान् प्रयास के परिणामस्वरूप ही ईश्वर आश्रम भवन सरिता विहार दिल्ली में हम रविवासरीय पूजा के अन्त पर ईश्वर स्वरूप महाराज के श्रव्य प्रवचनों को सद्गुरु महाराज के मुखारविन्द से साक्षात् टी.वी. पर देख सुनकर लाभान्वित होते हैं। दिनभर इन प्रवचनों के नशे में हम झूमते रहते हैं। सद्गुरु महाराज इनकी भक्ति को दिन प्रतिदिन बढ़ाइये।

सद्गुरु महाराज की निर्वाण जयन्ती का विवशता से इन्तिजार है। आशा है हर वर्ष की तरह बड़े उल्लास के साथ एक साथ श्रीनगर, जम्मू और दिल्ली में यह महान पर्व इस वर्ष भी मनाया जायेगा। सद्गुरु प्रेमियों, भक्तों, सत् शिष्यों और आम जनता से सविनय अनुरोध है कि वे इस पर्व में सम्मिलित होकर अपना जीवन सफल बना लें।

अन्त में दानवीरों से सविनय निवेदन है कि वे अपनी दानवीरता का परिचय देकर निर्माणाधीन सरिता विहार स्थित ईश्वर आश्रम भवन के निर्माण-कार्य में हाथ बटायें। उनकी यह आर्थिक सहायता केन्द्रीय आयकर विभाग की धारा ८० जी के अन्तर्गत आयकर से विमुक्त होगी।

ईश्वराश्रम परिवार को गुरु पूर्णिमा, जन्माष्टमी और आगामी सद्गुरु निर्वाण जयन्ती की बधाइयाँ।

— प्रो. मखनलाल कुकिलू

ŚIVA SŪTRAS

Vimarśini Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Māharāja

(Continued from January issue)

ईदृशस्य अस्य मातृकाचक्र संबोधवतः—

For the Yogi who is fully aware of Mātrkā -cakra, for him is -

शरीरं हविः॥ ८॥

(Śarīram haviḥ)

For such attainment a yogi has to offer all his three bodies of wakefulness, dreaming and dreamlessness as oblations into the fire of Universal God - Consciousness. The establishment of I-consciousness of all the bodies become offering in the fire of God - consciousness. When I-consciousness is established in gross body the experience is perceived by seeker that I am this gross body I am this subtle body. I am this subtlest body. Gross body is in wakeful state, subtle body in dreaming state and subtlest body is in dreamless state (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति). All the three bodies are called three coverings when the perceiver establishes I-consciousness in them. I consciousness on gross body enables you to perceive that I am the possessor of जाग्रतशरीर (wakeful body). Similarly I-consciousness on subtle body enables you to perceive that I am the possessor of स्वप्न शरीर (dreaming state) and I-consciousness on subtlest body enables you to perceive that I am the possessor of सुषुप्तिशरीर (dreamless state). So अभिमान or अहंभाव or I-consciousness on these three bodies is called शरीर। For such a Yogi all these three bodies become offerings in the fire of God-consciousness. By this way all these three I-consciousnesses become one with God-consciousness.

सर्वैः यत् प्रमातृत्वेन अभिषिक्तं स्थूल सूक्ष्मादिस्वरूपं शरीरं तत् महायोगिनः परस्मिन् चिदग्नौ हूयमानं हविः। शरीर प्रमातृताप्रशमनेन सदैव चिन्मातृताभिनिविष्टत्वात्। यदुक्तं श्री विज्ञानभैरवे-

महाशून्यालये वह्नौ भूताक्षविषयादिकम्।

हूयते मनसा साकं स होमः स्तुक् च चेतना॥ इति।

श्रीतिमिरोद्धाटेऽपि-

यः प्रियो यः सुहृत् बन्धुर्योदाता योऽतिवल्लभः।

तदङ्गभक्षणात् देवि ह्युत्पतेत् गगनाङ्गना॥ इति।

अत्र हि देह प्रमाताप्रशमनमेव पिण्डार्थः। श्रीमद्भगवद्गीतास्वपि-

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राण कर्माणि चापरे।

आत्मसंयम योगाग्रौ जुह्वति ज्ञान दीपिते॥ इति।

स्पन्दे तु

यदा क्षोभः प्रलीयेत तदा स्यात्परमं पदम्॥

इत्यनेनैव संगृहीतम्। क्षोभो देहाद्यहं प्रत्ययरूपः इति हि तद्वृत्तौ भट्ट

श्रीकल्लटः ॥ ८ ॥

सर्वैः - all the worldly people who have अभिषिक्तं - inagurated, प्रमातृत्वेन -by inserting their I-consciousness, स्थूल सूक्ष्मादि स्वरूपं शरीरं- in gross subtle and subtlest form of bodies, तत् - all these states of body महायोगिनः - of that great yogi परस्मिन् चिदग्नौ हूयमानं हविः - makes digest them in God-consciousness as offering in the fire. शरीर प्रमातृता प्रशमनेन - because he subsides I consciousness on these threefold bodies सदैव चिन्मातृताभिनिविष्टत्वात् - he gets always entry in the God-consciousness.

यदुक्तं श्रीविज्ञानभैरवे - as is said in Vijñāna Bhairava :-

महाशून्यालये वह्नौ - in the fire of the great voidness, भूताक्षविषयादिकं - when all the five gross elements all the organs with their perceptions, मनसा साकं - including one's mind, हूयते - are offered, स होमः that is called हवन, सुक् व - and the spoon by which you offer all these substances in the fire of consciousness is चेतना - awareness - we have to offer it with awareness. It is also said in Timirodghāta Tantra :-

यः प्रियः - whom we love, यः सुहृत् - who is your friend, बन्धुः - one who is related to you यो दाता - one who is giver of happiness. योऽतिवल्लभः one who is most loved, तदङ्गभक्षणात् - when you subside all these attachments in the fire of God - Consciousness, देवि - O Goddess! हि - certainly उत्पतेत् - one is situated, गगनाङ्गना - in courtyard of supreme ether of voidness. पिण्डार्थः - in essence, अत्रहि - in this above said verse of Timirodgata Tantra, देहप्रमातृता प्रशमनमेव - it is just to subside I consciousness on the threefold bodies. श्रीमद्

भगवत् गीतास्वपि - it is said in Bhagavadgītā also :-

सर्वाणीन्द्रिय कर्माणि - all the actions of the organs of the senses, प्राण कर्माणि चापरे - all the actions of the breathing आत्मसंयम योगाग्नौ - in the fire of one pointedness of God - consciousness, जुह्वति - are offered or are put completely in the fire of one pointedness of God - consciousness, ज्ञानदीपिते - enkindled by supreme knowledge.

इत्यनेनैवसंगृहीतं स्पन्देतु - in Spandakārikā also it is narrated- यदा क्षोभः प्रलीयेत- when all round agitation takes an end तदा- then, स्यात् परमं पदं - the supreme state of God consciousness is revealed.

क्षोभो देहाद्यहं प्रत्ययरूपः - agitation here means the state when you put your I-consciousness on these threefold bodies. When that is removed and put in God - Consciousness, then agitation is over. इति हि तत् वृत्तौभट्ट श्री कल्लटः - Kallata explains this above said exposition in his commentary of Spandakārikā.

अस्यच - for such a yogi

ज्ञानमन्नम् ॥ ९ ॥

(Jñānamannam)

For him the differentiated knowledge is the food he assimilates into undifferentiated knowledge or the undifferentiated knowledge constitutes his food yielding him fullness and peace in his own nature. Differentiated perception is his food. He eats or digests differentiated perception in his own supreme nature of consciousness.

यत्पूर्व "ज्ञानं बन्धः" इत्युक्तं - Previously in 1st awakening of "Sivasūtras" it is said ज्ञानं बन्धः (Jñānam bandhaḥ) the differentiated perception is bondage, तत् अद्यमानत्वात् - ग्रस्यमानत्वात् योगिनां अन्नं - when that differentiated perception is digested by great Shaivite Yogī in god-consciousness then that differentiated perception does not exist at all. It is why it is said in this Sūtras that it is his food. He digests it in his own nature. यत्संवादितं प्राक् - previously this point has been communicated in the following verse :-

मृत्युं च कालं च कला कलापं
विकारजातं प्रतिपत्तिसात्म्यम्।

ऐकात्म्य नानात्म्य वितर्कजातं
तदा स सर्वं कवलीकरोति॥ इति ॥

Or at the time of setting of wheel of energies then the seeker or aspirant at the time of realising his self digests everything, whether it is death or time or the bundle of all actions, all changes of life, identification with the knowledge of objects, thought constructs of non-difference or difference.

स - the aspirant तदा - at the time of realising his self, सर्व - everything, कवली करोति - digests; मृत्युं - death, कालं - time, कलाकलापं - group of activity, विकारजातं - all changes of life, प्रतिपत्तिसात्म्यं - identification with the knowledge of objects, ऐकात्म्यवितर्क जातं - thoughts of non difference नानात्म्य वितर्क जातं - thoughts of difference अथ च यत्स्वरूप विमर्शात्मकं ज्ञानं तत् अस्य अन्नं, पूर्णपरितृप्ति कारितया स्वात्म विश्रान्ति हेतुः तदुक्तं श्री विज्ञान भैरवे -

अत्रैकतमयुक्तिस्थे योत्पद्येत दिनादिनम्।

भरिताकारिता सात्र तृप्तिरत्यन्त पूर्णता॥ इति।

युक्तिर्हि तत्र द्वादशोत्तरशतभूमिका ज्ञान रूपैव। एतत् च स्पन्दे-

प्रबुद्धः सर्वदा तिष्ठेत् ।

इत्यनया कारिकया संगृहीतम्।

अथच - Second way of explanation of this sūtras is as follows:-

यत्स्वरूप विमर्शात्मकं knowledge of your own nature or your own real self is ज्ञानं - knowledge, तत् अस्य अन्नं - that knowledge is food of such a yogi पूर्ण परितृप्तिकारितया स्वात्म विश्रान्ति हेतुः-

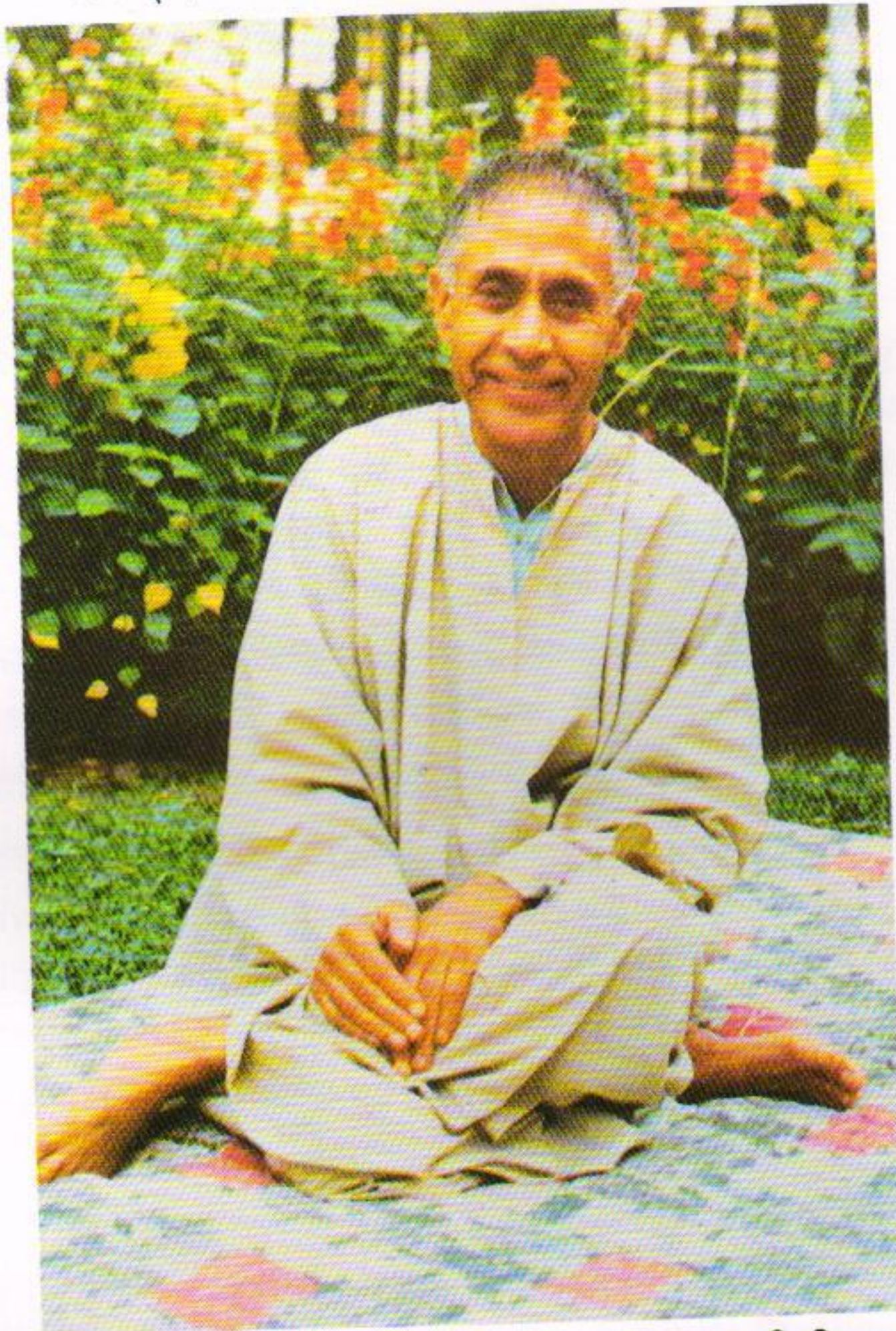
He does not crave for any food. He gets satisfaction. He is intoxicated in his own self-that knowledge of real self, because it gives him entire satisfaction.

It is said in Vijñānabhairava : In the world of means (उपाय) - 112 ways of entering in supreme nature if one gets mastery in any one of them he experiences fullness day by day by maintaining meditative way at one dhārnā that gives him perfect satisfaction and perfectness of self.

The way here is as one way of 112 ways. This is narrated in Spanda also:-

प्रबुद्धः सर्वदा तिष्ठेत्

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज



आविर्भावदिवस
9-5-1907

महासमाधिदिवस
27-9-1991

Always maintain awareness in every and each action of your work. If you miss that awareness you are gone from reality of life. If you are aware of your thoughts no thoughts will come to you. If you are not aware of thoughts more thoughts will come.

यदा तु एवं सततावहितो न भवति, तदा ज्ञानवतोऽपि अस्य अवधानावलेपात् -

When a Yogi सततावहितो न भवति - is not aware in continuity तदा ज्ञानवतोऽपि अस्य - then if he is established in God consciousness, he lacks awareness in many points (अवधानावलेपात्) awareness should be maintained in continuity otherwise it is missed in many points even by an established Yogi. Then what happens to him ?

विद्यासंहारे तदुत्थस्वप्नदर्शनम् ॥ १० ॥

(Vidyāsāmhāre tadutthasvapnadarśanam)

Out stepping his own nature of true knowledge at the time of entering into God consciousness i.e. Tūryā, he ill-fatedly enters into dreaming state.

प्रोक्त ज्ञानस्फाररूपायाः शुद्धविद्यायाः संहारे- निमज्जने, तदुत्थस्य- क्रमात्क्रमन्यक्कृत विद्या संस्कारस्य, स्वप्नस्य - भेदमयस्य विकल्प प्रपंचरूपस्य, दर्शनं - स्फुटं उन्मज्जनं भवति।

प्रोक्त - as said, ज्ञानस्फार रूपायाः शुद्ध - विद्यायाः - supreme pure knowledge of God consciousness which is the expansion of knowledge of one's own self, संहारे - निमज्जने - is destroyed by the missing of awareness or by subsiding the Supreme knowledge of God - Consciousness.

क्रमात्क्रमन्यक्कृत विद्या संस्कारस्य - because of lessening of that impression of supreme knowledge systematically स्वप्नस्य-भेदमयस्य विकल्प प्रपंचरूपस्य, दर्शनं- स्फुटं उन्मज्जनं भवति - The Yogi takes entry into the dreaming state and is put into the world of differentiated perception.

तदुक्तं श्रीमालिनीविजये - as is said in Mālinīvijaya Tantra:-

न चैतदप्रसन्नेन शङ्करेणोपदिश्यते।

कथंचित् उपदिष्टेऽपि वासना नैव जायते॥

इत्युपक्रम्य

वासनामात्रलाभेऽपि योऽप्रमत्तो न जायते।

तमनित्येषु भोगेषु योजयन्ति विनायकाः॥ इति तदेतत् -

अन्यथा तु स्वतन्त्रा स्यात् सृष्टिस्तत् धर्मकत्वतः।

सततं लौकिकस्येव जाग्रत्स्वप्नपदद्वये॥

इत्यनेन स्पन्दे संगृहीतम्। अतश्च नित्यं शुद्धविद्याविमर्शन परेणैव योगिनाभाव्यं इत्युपदिष्टं भवति। यथोक्तं -

तस्मात् न तेषु संसक्तिं कुर्वीतोत्तमवाञ्छया। इति श्री पूर्वे।

न चैतदप्रसन्नेनः - If your master initiates you whole heartedly still you cannot maintain awareness in Samadhi, because there must be ample satisfaction in the heart of your master before entering into the state of God consciousness (स्वरूपलाभ) Entry into it takes place only when your master is completely pleased with you. Because that reality was not told by Lord Śiva to Pārvaṭī also. This thought of supreme objectivity is told to Pārvaṭī when Śiva was pleased with her.

इत्युपक्रम्य - It is further stated in Mālinī-Vijay that - वासनामात्रलाभेऽपि- The Yogi who does not maintain his awareness at the time of achieving supreme yogic powers, on that achievement Yogi who gets his awareness detached, he is detached from God consciousness. Because you are so happy that you have gained some powers on that path. These powers are lessened by being over Joyous, for him all obstacles of life become players and he is being played.

तदेतत् स्पन्दे संगृहीतम् - It is said in Spanda also :-

अन्यथा तु स्वतन्त्रा स्यात् -

When a yogi lacks awareness of God - consciousness then creative energy of Lord Śiva becomes independent. Otherwise it was dependent to him. These Yogis behave then just like ordinary people. In all the three states of wakefulness, dreaming and dreamless they look like ordinary people.

अतश्च नित्यं शुद्ध विद्याविमर्शनपरेणैव योगिना भाव्यं इति - So what ever happens Yogi must maintain awareness in continuity. It is उपदिष्टं भवति - what we are being taught.

यथोक्तं श्रीपूर्वे - as a said in Mālinivijya

तस्मात् न तेषु संसक्तिं - so you should not get attached to those yogic powers. You should get detached.

श्री स्पन्देऽपि - In Spanda also it is said

अतः सततमुद्यक्तः स्पन्द तत्त्व विविक्तये।

जाग्रदेव निजं भावं अचिरेणाधिगच्छति॥ इति।

So the one who is always aware greatly in each and every moment of life for finding out the real characteristic of Spanda then in a very short period he gets entry in God - consciousness in the very state of wakefulness.

एवं “चित्तं मन्त्रः” इत्यतः प्रभृति मन्त्रवीर्यमुद्रावीर्यानुसंधि प्रधानं-

उच्चार रहितं वस्तु चेतसैव विचिन्तयन्।

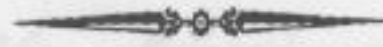
यं समावेशमाप्नोति शाक्तः सोऽत्राभिधीयते॥

इत्याम्नातं शाक्तोपायं विविच्य, अवधानावलिप्तं प्रति विद्यासंहारे तदुत्थ-स्वप्नदर्शनम्' इति सूत्रेण एतदनुषङ्गेण आणवोपाय प्रतिपादनस्य अवकाशो दत्तः इति शिवम्॥

So चित्तं मन्त्रः from this sūtras शाक्तोपाय is explained with मन्त्रवीर्य and मुद्रावीर्य।

उच्चार रहितं वस्तु - When that object of perception of your nature (note differentiated perception) is meditated by thought only by not reciting mantra the one who has done this gets entry into Śāktopāya : when maintainance of awareness is lacked by some people who are treading on the path of Śāktopāya for them “विद्या संहारे तदुत्थ” this last Sūtras is told. Accordingly when शुद्धविद्या gets destroyed by lack of awareness the yogi gets entry into dreaming state. (what will happen to him he has lost every thing) so for them author has given the way of entry into आणवोपाय where he can learn to maintain awareness for getting entry into Śāktopāya.

Here ends second awakening



A SURPRISING SITUATION

(Superconscious Experience)

— Pandit Jankinath Kaul "Kamal"

The dawn had been brightened by the rising sun looking over hills in the Paradise on Earth. The temple bells were ringing and mosques were echoing with congregational prayers. A three year old boy moved to the room adjacent to the one he had been sleeping over the night. His attention was suddenly claimed by his elder brother who had been sitting quiet in an erect posture. He went near and gazed. Who can say what the boy thought? But he stopped, wide eyed and wonderstruck.

The boy was eager. He wanted to talk something to the brother. He wanted to disturb the meditator. But he did not. He was quite calm. He soon noticed the eyes opening slowly like the leaves of a lotus with rays of the Sun. The boy uttered the question which had been consolidating inside his tender lips. He said with love and care, "Baai Saab! What is this that you are doing while sitting in posture with your eyes closed? I have also seen you holding your nose with your thumb and middle finger of your right hand for some time?"

To these innocent enquiries of the little boy, the saintly brother could say nothing except that he gave a loving smile and thus wanted to whisk him away. But the boy, inquisitive as he was, repeated his expression with redoubled curiosity, and sitting by, awaited reply for his own satisfaction.

"I am experiencing to see God". This hesitated response of the saint-brother was in a splendidly mild tone. The boy appeared feeling peace. He instantly, but sincerely offered himself to be taught how to see God. Then he waited the word of the master and watched his hissing sound. Soon these words came out from the lips of the saint - "Just fix your gaze on the tip of your nose and you will see God". Listening to these words of grace, the earnest boy sat in posture, then and there, and fixed his gaze on the tip of his own nose. Some minutes passed and the boy appeared to be motionless. He continued to be so for some time more. The brother fell in a surprising situation. He wanted to awaken the boy from this slumber. But, would he disturb the 'calm and quiet' boy with a cry! No.

Maheshwar Nath Raina was a man of depth. He was himself cool and calm. Being the eldest son of his father he was conscious of his responsibility towards his loving younger brother Lakshman, who was given the family

pet name 'Lala Saab'. Not only this, he was a man of integrity also. Besides being a householder living in the joint family of Narayan Das, he was initiated into the Shiva order of Kashmir Trika Philosophy by Swami Ram Ji, the great sage of learning and practice, who lived in the vicinity and was served with devotion and reverence by the whole family. Maheshwar Nath was a person - serene and sober. Although he did not want to disturb the boy yet his surprise of the extraordinary experience with him did not allow him to wait any longer. Just as cool water added to hot makes it lukewarm and fit for bathing in an uncertain weather, so he expressed his surprise combined with soothing patience to the boy in very mild and gentle words, "Lala Saab! Why do you not open your eyes ? Just talk to me again".

Now the curiosity that the young boy had shown earlier, changed its centre to the manuring mind of the elder brother. The boy had been in a fit. Since sudden unconsciousness appeared to have overtaken him, he could say nothing to the appealing words of Baai Saab. Twenty minutes had passed and the sympathetic brother had been growing more and more anxious over the little boy. Seriousness prevailed for some time. Before his impatience breaks, Lo! the boy showed inclination to open his eyes. Slowly and slowly he seemed to regain consciousness. The parents and the brother were glad again, but the surprising experience with the boy left a deep impression on them. Later, whenever the boy sat in posture and fixed gaze on the tip of his nose, he went into super-conscious state. The innocent parents felt concerned. They thought that the innocent boy had been influenced by some undesirable spirit and began to think ways and means of freeing him from the malady. But the boy Lakshmana began to feel more and more interested in sitting with eyes closed. He sometimes talked to his brother in confidence. Maheshwar Nath, thus became interested in the curious little boy with his wonderful experiences. One day, out of curiosity, he asked him as to how and what he had been experiencing while he sat in posture with closed eyes. "I see the Biggest of the big", was the spontaneous reply of the boy. By this expression the boy perhaps meant 'the Lord of the lords or the God of the Gods' as he might have been feeling in his queer experience in the childhood. It is otherwise, an inner experience which cannot be expressed in words just as a dumb person cannot express the taste of a piece of gurr(Sweet) he takes. Upanished says of this experience –

न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा।

प्रमाणमन्तः करण प्रवृत्तयः ॥

Na Śakyate varṇayitum tadā girā /

Pramāṇamantaḥ karaṇa pravṛttayaḥ //

"When union of *jīvātma* and *paramātma* takes place, the experience cannot be expressed in words. Only the purified internal organs stand witness to it." It was perhaps this experience that the Yogi boy termed in Kashmiri '*Badi-bod*' meaning 'the Biggest of the big'. It must have been an experience of feeling of the Universal Self, the impression of which must have been carried over from the previous birth where this yoga, through divine contemplation, must not have been completed to perfection and therefore needed another span of life in body. Lord Krishna says to his sincere friend and disciple, Arjuna —

‘पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः’ ।

Pūrvābhyāseṇa tenaiva hṛiyate hyavaśo'pi saḥ /

"The Yogī is, by his practices directed with perfect faith in the previous birth, forced to follow these to perfection in the present one."

Such was the opinion of those wise persons who came to know about the extraordinary behaviour of the boy at this early stage of human life when even simple comprehension is vague and quite unripe. There have been brilliant children who assimilated much more than an average child could. There have also been a few who did have not only had a sharp grasp but also the excellence of fine intellect that we might term 'Intuitional Intelligence'. One is wonderstruck to know that Ādi Śankara had mastered all the Vedas and important texts, even at the age of eight years and by the sixteenth year of his great life he had written the three monumental commentaries called the '*Prasthānatrayī*.' The boy Tirath Ram Goswami (Swami Ram Tirtha) mastered Sanskrit language at the intermediate stage when the Punjab University had to pass the rule of compartmental condition in the examination at his instance. He excelled in Mathematics and learnt the Western Literature and Philosophy by his own Self-effort, as he had no other resources to help him. Narendranath Dutt (Swami Vivekananda) was among the few who attracted the attention of Sri Ramakrishna Paramahansa at Dakshineswar. Venkataramana (Sri Ramana Maharshi) had little academic education and he rose to preach the doctrine of 'WHO AM I'. Ganapati Shastri, a scholar of repute in the South, Paul Brunton of France and Arther Osborn of the United States of America satisfied their quest in spirituality from him. No

material splendour and no material poverty could ever deter the advancing soul from the path of progress towards Self-realisation.

Thus we come to the conclusion that intellectual genius travels from birth to birth and maintains its standard of progress till perfection is reached. If it has been pure, untainted and sincere, it never gets blurred or weakened, as the body does while it advances towards old age. Lord Krishna assured Arjuna after he gave expression to his despondency —

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।

न हि कल्याण कृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति॥

Pārtha naiveha nāmutra

vināśastasya vidyate,

Nahi kalyāṇakṛtkaścit

durgatim tāta gacchati !!

'O dear seeker after Truth ! Neither in this world nor in the other do the intellectual attainments of a person go waste with the extinction of his body. 'O dear ! one who aspires to Truth, is never led to degradation'.

"Is this not quite true about this wonderful boy Lakshmana !" Expressing thus among themselves, the wise around him appeared to be confident that a Yoga - brasta was born. They assured each other by giving references from the Bhagavadgītā —

‘शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते’

Śucīnām śhīmatām gehe yogabhraṣṭo' bhijāyate !

"One, detached in Yoga, takes birth in the family of the righteous and rich". Such blessed souls take birth only to carry their contemplation. They realise the sumum bonum of life now and here. They come to teach and elevate the ordinary souls who realise nowhere unless they are helped to cultivate the constant awareness of the Supreme Self, in the forgetfulness of which their intellect always wavers and thus they keep on with the rut of coming and going into this world of 'fancy and fear'. They do not easily realise the great sentences of the Vedas —

“सर्वमिदमहं च ब्रह्मैव”

“नेह नानाऽस्ति किञ्चन”

'Sarvam idam-aham ca Brahmaiva'

'Neha nānā'sti kiñcana'

i) 'Verily all this (what appears to be different from the self) is Brahman - the Universal Transcendental Self'.

ii) 'It is all unity in diversity' on the otherhand, those on the path, comprehend these textual instructions on the very first hearing though it takes them time for realisation.

This was the earliest experience of the intense spiritual ecstasy of Sri Swami Lakshman Joo. He came to bless this splendid valley of Kashmir where Nature's exquisite scenic beauty in singing cataracts, rhythmic falls, peaceful lakes and above all the fresh and fragrant forests abides. .

In the words of Utpaladeva, we make obeisance to him thus —

न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याऽविधिपूर्वकम्।

एवमेव शिवाभासः तं नमो भक्तिशालिनम्॥ (Śivastotrāvalī 1/1)

Na dhyāyato na japataḥ syād-

yasyā-avidhipūrvakam

Evameva Śivābhasah

tam namo bhaktiśālinam

"One without having to learn how to meditate on the self and also how to remain in constant awareness of the supreme, feels the touch of divinity by mere chance or coincidence. He is endowed with true devotion. Obeisance be to him.

Pandit Rameshwar Jha, the celebrated scholar and spiritualist, in his beautiful Sanskrit hymn to the Preceptor (Gurustuti), has rightly traced the spiritual ancestry of Swami ji thus —

शिष्याननेकाञ् जगतः समुद्धर-

न्नासीत्पुरा गुप्तगुरुर्गरीयान्।

यो लक्ष्मणो लक्ष्मण एष नो गुरुः

पायात्समस्ताञ् शरणागतान् सः॥

Śiṣyān anekān Jagataḥ Samuddharan

nāsītpurā gupta-gurur-garīyān,

yo Lakṣmaṇo Lakṣmaṇa eṣa no guruḥ

pāyāt samaṣṭān śaranāgatān saḥ.

"In olden times there lived Lakshmanagupta, the preceptor of Abhinavagupta, who carried a large number of his disciples across the ocean of Samsara, took the form of the great preceptor, Lakshmanjoo. May he vouchsafe us-all his disciples.

Courtesy -

Sant Samagam Research Institute

37/4-Pandoka Colony, Paloura, Jammu - 181121

Shaivism, Human Brain and Pañcastavī

– Triloki Nath Dhar

(I would like to relate an event. Perhaps it was 27th (or 28th) of September, 1991. It was between 2 and 3 p.m. I was travelling in a bus to Hansi (Haryana) to see my son. I had a vision. Ishvar Svarup talked to me in usual tone and tenor :

"I am not out of town.

I am very much in the town.

I am out of dryash"

I was confused because. I did not know Swamiji had attained mādāsamadhi. After 4 p.m. I reached Hansi. I did not find my daughter-in-law at home. (Her father is a great devotee of Swamiji). I enquired from my son about her whereabouts. He replied that Swamiji had attained mahāsamādhi and she had left early morning for Delhi to have the last darshan of Swamiji. Swamiji's words re-echoed in my mind spoken one or two hours before).

Shaivism of Kashmir appears as old as Vedas. Siva's cave shrines at Amarnath, Hareshwar (Khunmoh) and Mahadev (Ledwas, Harwan) bear testimony to the very ancient origin of Shaivism in Kashmir. The structure of the Amarnath Caves and formation of the ice lingam is itself a miracle. The Hareshwar Cave is also peerless. It has a dome having grey or white snak folds from which water drops fall over the lingam below. The cave resembles human brain in the skull. The space around lingam is just like lateral ventricle of the human brain. The Mahadev mountain is shrouded in mystery for a long time now. It is an unique. Nearby at the base of the summit slope is the mysterious rock at the base of which Guru Shriman Vasugupta unearthed Shaiva Sutras. How long the said Sutras remained buried under the rock and what was its composition no body knows. Lacs of books were dumped into Dal Lake by Sikander Iconoclast. Most of the links and many branches of knowledge disappeared for ever. All these things affirm that Shaivism is very ancient and it germinated and sprouted in the soil of Kashmir and was not imported from anywhere.

Parādīśakti or Tripura Sundarī- cosmic Kriyā Śakti and Intelligence, is Śiva's consort.

Universe or universes have no existence save in consciousness and the source of consciousness is Śiva. Consciousness is distinct from matter, energy and space.

The seat of consciousness is the human brain, a one and a half kilo mushroom like made up of white and grey tissues. It is composed of 30

billion *nerve cells* and about 300 billion cells of non-nervous connective tissue.

The brain on the basis of latest research, is the greatest wonder in the entire cosmos.

Each nerve cell or neuron is a working unit in the nervous system and are used to send, receive or store signals (electric impulses) for carrying on multifarious functions of the body. This likens brain to a vast computer network. Some computer scientists are devising neural nets to understand the nature of consciousness. However, it is becoming abundantly clear that brain and mind are two separate identities. Furthermore, even the most advanced computer cannot compare with the billionth power of the brain. As Nobel laureate Gerald Edelman says that just to count the connections to the cortex (upper and major portion of the brain) at one per second would take 32 million year.

Human brain has evolved over millions of years from inside out. Neuroscientist Paul Maclean differentiates human brain as consisting of three brains. Brain stem and structures at the top of the spinal cord are together called reptilian brain, It evolved during evolution of early life forms like snake, lizards and reptiles. This part of the brain controls breathing, heartbeat, and muscle movements and drives like sex, eating, mating, sleep, aggression, possessiveness etc. These traits are the creation of Śiva's Aiyam (ऐं) Bīja.

Covering the R. Complex is the mammalian brain or limbic system. It is the seat of emotions, affections, social behaviours, parental concerns and maternal feelings. All these qualities were created by Śiva's Kleem (क्लीं) Bīja.

Covering the limbic system is the third brain consisting of outer bulges of cerebrum (principal part of the brain) and overlying cerebral cortex. In it are lodged the powers of logical reasoning, scientific and mathematical analyses, intuition and artistic compositions, in fact everything that has contributed to the development of *human civilization*. All these traits are created by Śiva's Sauh (सौः) Bīja.

Parādisakti or Tripurā (Mother Divine) consorting Śiva brings forth, nourishes and evolves universe with beings. The stunning Power and Beauty of the Mother Divine has been sung ecstatically but non-traditionally in Pañcastavī, a long hymn in five stavas (chapters). Recitation of Pañcastavī

was an indelienable part of daily or collective worship of almost every Kashmiri Pandit for more than a thousand years.

The riddle of consciousness and human brain, the greatest wonder in the universe, appears uniquely resolved in the first verse of stava 1st of Pañcastavi reproduced below :

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधतींमध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णागोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः।
एषाऽसौ त्रिपुरा हृदिद्युतिरिवोष्णांशोः सदाहः स्थिता
छिन्द्यात्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघीं, ज्योतिर्मयी वाङ्मयी॥

The meaning of the verse on the basis of details rendered above about the human brain would be as under :

With spectral effulgence of Indra's Bow encompassing the evolutionary consciousness (represented by the brain centre) and scattering perfected consciousness like benign moon light over supracortical hood Parādishakti Tripura, ever aglow in the core like the Sun, radiates Light and Cosmic Intelligence and may through triple powers destroy our sins all of a sudden.

Triple powers of Tripurā as alluded to in the verse are Aiyam (ऐं) Kleem (क्लीं) and Sau (सौः)

During transition from sleep to waking it has been found that electrical impulses are shot like arrows from the brain centre towards supra-cortical layers.

Introduction of the word *sahsa* (सहसा) in the fourth line of the verse and repeated in the first line of verse No : 3 (ibid) brings Pañcastavī in line with Sahasā Doctrine of Vatulanātha as discussed by Anantaśaktipāda in his commentary on Vatulanātha's Sūtras. (The text alongwith Swamiji's English translation published by Ishwar Ashram Trust, Srinagar).

The first verse of Pañcastavī is unique and unparalleled. Such a verse cannot be found in any yogic or vedic lore.



Message of All Kendras of Ishwar Ashram Trust, Kashmir

1. The worst of all violence is the killing of a living being, the taking of its life for the pleasure of eating it. There is no greater sin than this.
2. All those involved in any way with the acts of killing, preparing and eating meat are equally guilty and equally criminal.
3. Fruits of meditation can only be possessed by a pure vegetarian.
4. It should be one's duty not only to maintain a strict vegetarian lifestyle but also to loudly oppose the killing of animals and the taking of meat.
5. Three ghastly crimes are committed in the slaughtering of animals for the enjoyment of eating their flesh namely *prāṇaarna* (taking life away from an animal though it is innocent), *pīdā* (crime of inflicting great pain on an animal while killing it), *vīryakhepa* (crime of taking away animal's strength).
6. Ancient sages and saints teach us that whoever's flesh you eat in this world will eat you in the next world.
7. Count the hairs of the animal you have killed and eaten and for that many lifetimes you will be killed by that animal.
8. He who avoids meat eating for his whole life receives the same meritorious fruit after death as he who adopts *aśvamedha yajna* every year for 100 years.
9. You should not kill animals at the time of marriage celebrations or for your own self-satisfaction or in rituals or in hosting your near and beloved ones.
10. You should not feel yourself into thinking that you must take meat for reasons of health. This is no reason. Why should you kill an innocent being, take its life because of your disbelief and fear of death.

Courtesy :-

Dr. Anusheel Munshi



विज्ञानभैरव - समीक्षात्मक अध्ययन

प्रवचनकार

- ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजी महाराज

(जनवरी अंक से आगे)

आनन्दे महति प्राप्ते दृष्टे वा बान्धवे चिरात्।

आनन्दमुद्गतं ध्यात्वा तल्लयस्तन्मना भवेत्॥ ७१॥

(अन्वय - आनन्दे महति प्राप्ते वा चिरात् बान्धवे दृष्टे उद्गतं आनन्दं ध्यात्वा तल्लयः तन्मना भवेत्)

लम्बे समय से विदेश गये किसी मित्र या बन्धु को देखकर प्राप्त आनन्द की प्राप्ति के अवसर पर एक साधक को उस आनन्द उदय बिन्दु पर एकाग्र होना चाहिए और उस उदित आनन्द के साथ इस प्रकार लीन होने पर साधक का मन उसके साथ एकाकार होता है।

वा बान्धवे चिरात् - आपने परम प्रिय मित्र को या बन्धु को लम्बी अवधि के बाद देखा हो तो उसके प्रथम समागम से ही आप आनन्द से पुलकित होते हैं। यह आनन्द भी उसी आनन्द के समान है। इन दोनों अवस्थाओं में आपने उद्भूत आनन्द के स्रोत पर ध्यान देना है अर्थात् इस विशेष आनन्द की उत्पत्ति किस बिन्दु पर हुई, इस बात पर हमें विचार करना है। अपना मन सावहित करके उसे उसी बिन्दु पर लगाइये तो आप निर्विकल्प समाधि दशा को प्राप्त करोगे।

पिछले दो श्लोकों में प्रत्यक्ष संभोग सुख और अप्रत्यक्ष संभोग सुख की ओर संकेत किया गया था। अप्रत्यक्ष संभोग सुख स्मृति-जन्य होता है जबकि प्रत्यक्ष संभोग सुख परस्पर कामचेष्टा जन्य होता है। स्मृतिजन्य आनन्द की काष्ठा में अपूर्वसुख की प्राप्ति आधार के अभाव में भी यथावत् होती है और वह सुख अपने में ही यथास्थित था जो कि स्मृति ज्वाला से प्रदीप्त हो उठा। इसी प्रकार से हमारे अन्तस्तल में महा आनन्द की ज्योति हर समय जलती रहती है जो कि अनुकूल परिस्थिति पर अपना प्रभाव दिखाती है। हमें उस महा आनन्द के उदय बिन्दु के स्रोत पर समाहित रहना चाहिए।

यह निरा शाम्भवोपाय है।

उद्गतं का अर्थ है - उद् गच्छन्तं अर्थात् जहां से यह आनन्द उदित होता है।

तल्लयः - वह साधक जिसका उसमें विलय हुआ हो। अथवा जो उसमें समा गया हो।

तन्मनाभवेत् वह उस आनन्द के साथ एकाकार होता है।

चाहे आनन्द प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सुखोद्भूत हो आपने उस ओर ध्यान न देकर उस आनन्द के बिन्दुस्रोत पर ध्यान देना चाहिए। उस स्थान पर टिके रहिए। अपना समाहितभाव मन और विचार उसके साथ एक करें। जब आप निर्बाधरूप से अपना विचार उस पर टिके रखोगे तो आप भावावस्था को पावोगे।

यह शाक्तोपाय विधि है

जग्धिपान कृतोल्लास रसानन्दविजृम्भणात्।

भावयेत् भरितावस्थां महानन्द स्ततो भवेत् ॥ ७२ ॥

(अन्वय - जग्धिपान कृतोल्लास रसानन्द - विजृम्भणात् भरितावस्थां भावयेत् ततः महानन्दः भवेत्)

भक्ष्य भोजन, शीतल जलपान आदि से शरीर में उल्लास, रस और आनन्द के प्रकट होने से व्यक्ति का सारा शरीर हर्षातिरेक से भर जाता है। इस आनन्द की स्थिति में समाहित मन से भावना करने पर साधक परम आनन्द से सरोबार होता है।

जग्धि - मधुर खाद्य वस्तु।

पान - शरबत आदि जल पान। यह क्षीर-पान या वीरपान (मदिरा) भी हो सकता है। जो कुछ भी आपको अच्छा लगे या जो कुछ भी आपको स्वादिष्ट प्रतीत हो। उस आनन्दावस्था में आप अननुभूत आनन्द के साथ एकाकार हो जाते हैं।

भावयेत् भरितावस्थां - अपने आप को व्यक्ति मात्र न समझकर यह अनुभव करो कि मैं सब प्रकार से परिपूर्ण हूँ। आपने यह कल्पना करनी है कि आप परमोच्च शिवभाव में स्थित हैं।

यह शाक्तोपाय है क्योंकि जहां जहां आपने आधार को चाहा वहां वहां शाक्तोपाय की स्थिति है। शाक्तोपाय आधाराश्रित है। जहां आधार अस्फुट हो वहां शाम्भवोपाय है। इस विधि से आप स्वयं ही शाक्तोपाय अथवा शाम्भवोपाय का विवेचन कर इन दोनों में अन्तर को स्पष्ट कर सकोगे। यह उल्लेखनीय है कि शाम्भवोपाय एक प्रक्रिया नहीं अपितु एक अवस्था है। शाक्तोपाय एक प्रक्रिया है क्योंकि शाक्तोपाय ही आपको शाम्भवोपाय पद की ओर ले सकते हैं। प्रक्रिया और अवस्था में अन्तर का भारी महत्त्व है।

एक शिष्य के पूछने पर कि क्या शाम्भवावस्था में स्थित साधक शाक्तोपाय प्रक्रिया का भी अनुयायी बनता है। स्वामी जी महाराज समझाते हैं कि वह शाक्तोपाय से नीचे आणवोपाय की ओर नहीं जा सकते हैं।

‘दृष्टे च बान्धवे चिरात् भी शाक्तोपाय ही है ॥

गीतादि विषया स्वादा समसौख्यैकतात्मनः।

योगिनस्तन्मयत्वेन मनोरूढे स्तदात्मता ॥ ७३ ॥

(अन्वय - गीतादि विषय आस्वाद असम सौख्य एकतात्मनः योगिनः मनोरूढेः (हेतोः यत्) तन्मयत्वं (तेन) तदात्मता ॥)

जब योगी का मन संगीत के अवर्णनीय आह्लाद और स्पर्श रूप रस आदि दूसरे आनन्दों से सरोबार होता है तो साधक योगी इस एकाग्रदशा में अपने मन को अभ्यास से तन्मय बना लेता है और अन्ततः उसी में एकाकार होता है।

गीतादि विषय - संगीत के किसी वाद्ययंत्र को या किसी संगीत समारोह को लीजिये। उसमें योगी का मन आह्लाद की असाधारण दशा से तब आक्रान्त होता है। जब वह संगीत के विभिन्न स्वरों के उतार चढ़ाव से उत्पन्न मधुर रागादिकों के लय में लीन होता है अथवा “असम सौख्य” - अवर्णनीय आनन्द में निमग्न होता है। संगीत को भी रसनेन्द्रिय या श्रवणेन्द्रिय के विषय की तरह एक विषय माना गया है।

तन्मयत्वेन मनोरूढेः - योगी तब इस दशा का अनुभव करता है जब वह संगीत की तान के साथ एकाकार होता है और उसका मन संगीत की संहत ध्वनि में निमग्न होता है, विभक्त स्वरों में नहीं।

स्वामी जी से किसी शिष्य के पूछने पर कि क्या कविता पाठ को भी गीत की श्रेणी में ही रखा जाये तो स्वामी जी महाराज प्रत्युत्तर में कहते हैं कि यह तब संभव है जब आप कविता श्रवण में अपने मन को ठोस ध्वनि के साथ एकाकार करेंगे विभक्त स्वरों की ओर ध्यान नहीं देंगे। वही नाद स्वरूप है। वही सात स्वरों में व्याप्त है। यह तभी संभव है जब आप तार वाद्ययंत्र से उत्पन्न एकीकृत ध्वनि के साथ एकतान हो सकते हैं। हमें ध्वनि सौन्दर्य पर एकाग्रचित्त होना चाहिए। संगीतकार सातों स्वरों को एक साथ प्रकट करता है और एक ठोस ध्वनि को उन सातों स्वरों के मेल से जन्म देता है। हमें उसी ठोस ध्वनि पर एकाग्र होना चाहिए। अलग अलग स्वरों से उत्पन्न नाद पर हमें ध्यान नहीं देना चाहिए। जो कुछ भी हम सुनें वह हम संयुक्त रूप से सुनें, विभक्त रूप से नहीं तभी समाधि में जाने की आशा है। यदि आप संगीत की आकर्षक ध्वनि की सराहना करने की क्षमता से वंचित हैं तो आप अपने को जड़ ही समझें। आचार्य अभिनवगुप्त ने “तन्त्रालोक” के तीसरे आह्निक में इसी विषय पर चर्चा करते हुए कहा है कि -

येषां न तन्मयीभूतिः

ते देहादि निमज्जनम्।

अविदन्तोऽमग्न संवित्

मनस्त्वहृदया इति॥

अर्थात् जो संगीत की तान में लयीभूत होने की क्षमता नहीं रखते हैं वे स्वात्मा को विश्वात्मा में एकाकार करना नहीं जानते हैं वे हृदयहीन हैं, वे जड़ हैं। वे जीवन्त प्राणी

न होकर मृतात्मा हैं।

पराभाव में स्थित योगी उस संगीतनाद के स्पर्श से ही समाधिस्थ होता है जो विशेषनाद किसी नाद में अवस्थित नहीं है। आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि किसी कविता में विद्यमान परमभाव को एक साथ हृदयंगम करने से साधक पराकोटि पर पहुंचता है। इतना ही नहीं उच्चकोटिस्थ साधक सामान्य वार्तालाप से भी तन्मयीभाव को प्राप्त करता है। उनके लिए कविता या विशेष नाद की उपस्थिति अनिवार्य नहीं। उनके लिए सामान्य वार्तालाप भी जप या मन्त्र उच्चार से कुछ कम नहीं। एकाग्रचित्त होना सर्वथा आवश्यक है। यह शाक्तोपाय है।

यत्र यत्र मनस्तुष्टिर्मन स्तत्रैव धारयेत्।

तत्रतत्र परानन्द स्वरूपं सम्प्रवर्तते॥७४॥

(अन्वय - मनः तुष्टिः यत्र यत्र मनः तत्रैव धारयेत् तत्र तत्र (योगिनः) परानन्दस्वरूपं संप्रवर्तते॥)

जहां जहां मन को संतुष्टि का अनुभव होता है वह वहां वहां स्थिर रहे। इस तरह से अपनी बुद्धि को स्थिर करके योगी यह भावना करे कि उसका अपना स्वरूप ही सर्वत्र स्फुरित हो रहा है।

जहां कहीं आपका मन शान्तिपूर्ण रहता है या शान्तभाव में सुव्यवस्थित है, वही अपने मन को सुदृढ़ रखे। यदि आपका मन घर के उद्यान में सुशान्तरूप से कर्मरत है, उसे वहां से विचलित न करो। उसे प्रार्थनाभवन की ओर न धकेलो। एक सुस्थितस्थान से उठाकर दूसरी ओर मन को लेना पाप है। जहां कहीं आप का मन सुस्थिर है आकृष्ट है उसे वहीं रहने दो अन्यत्र न जाने दो। यह भी न सोचो कि ऐसा करना निन्द्य है या ऐसा करना प्रशस्य है। उस अवस्था में प्रशंसनीय कर्म भी आपके लिए अप्रशंसनीय बनता है।

तत्र तत्र परानन्दस्वरूपं सम्प्रवर्तते - उसी स्थान पर उसी समय परानन्द दशा उदित होगी। जहां कहीं आपका मन प्रशान्त अवस्था में रहे वहीं उसी समय महानन्द की पराकाष्ठा प्रकट होगी। इसी बात को आचार्य अभिनवगुप्त ने “तन्त्रालोक” के चतुर्थ आह्निक में इस प्रकार स्पष्ट किया है -

यत् किञ्चित् मनसाह्लादि

यत्रक्वापीन्द्रियस्थितौ।

योज्यते ब्रह्म सद्धान्नि

पूजोपकरणं हि तत्॥

अर्थात् जिस किसी से मन की तुष्टि हो तन्मानेन्द्रियों की वह अवस्था पूजा का उपकरण बन जाती है जो एक साधक को परंब्रह्म के सत्य धाम के साथ मिलाती है।

(नमः संवित् वपुषे)

शैवीसाधना के दर्पण में—अभ्यास

—सुश्री प्रभादेवी

अद्वैत शैवागम में अभ्यास के विषय में जितनी भी चर्चा की गई है अलौकिक है। जहां तक जप, यज्ञ अर्चा आदि का संबंध है वह तो अन्य शास्त्रों में भी वर्णित हैं किन्तु प्राणों का अभ्यास जिस विशद रूप से त्रिक शास्त्र में वर्णित है वैसा अन्य शास्त्रों में देखने को नहीं मिलता। शाम्भव, शाक्त तथा आणव उपायों के द्वारा शैवी साधक तुर्यानन्द का अनुभव करके जीवन्मुक्त बनता है। अभ्यास क्या है ? सरल शब्दों में प्रभु के प्रति तीव्र अनुरागी होकर अहर्निश नामस्मरण में लगे रहना अभ्यास कहलाता है। उठते, बैठते, खाते, पीते, चलते, फिरते, बातें करते हुए प्रभु की ओर लटक लगनी ही अभ्यास है। इसकी प्राप्ति तीव्र-शक्तिपात से होती है। कहा भी है -

‘तत्रैतत् प्रथमं चिन्हं रुद्रे भक्तिः सुनिश्चला’

अर्थात् भगवान के प्रति अटल भक्ति का होना ही शक्तिपात का पहला चिन्ह है। इसी विषय में यह भी कहा है-

“शक्तिपात वशात् देवि नीयते सद्गुरुं प्रति।

दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते कर्म वासना”

भगवान शंकर पार्वती जी से कहते हैं - हे देवी प्रभु के शक्तिपात से ही मानव सद्गुरु के पास भरसक लिजाया जाता है, वह दीक्षा देकर इसे परम ज्ञान प्रदान करते हैं और अनन्त जन्मों की कर्म वासना का क्षय करते हैं। यही दीक्षा शब्द का यथार्थ अर्थ है।

अभ्यास करने में प्रतिबन्ध तीन मलों के कारण होता है। आणवमल, मायीयमल तथा कर्ममल के होने से साधक का अभ्यास कुण्ठित हो जाता है। आणवमल आत्मा के साथ संबंध रखता है। इस मल से मनुष्य को अपूर्णता का भान होता है। इत्यतः उसे सांसारिक पदार्थों में राग तथा अभिलाषा उत्पन्न होती है। संक्षिप्त शब्दों में स्वरूप अप्रथन आणवमल कहलाता है।

मायीयमल अन्तःकरणों के साथ संबंध रखता है। इसका फल यह होता है कि यह मेरी स्त्री है, यह मेरा धन है। यह मेरा है और यह दूसरे का है इस प्रकार का निश्चय बना रहता है। कर्ममल शरीर के साथ संबंधित है क्योंकि यह शरीर ही कर्म-पिंड है। इसीलिए मानव यह समझता रहता है मैं सुखी हूं, दुःखी हूं। मैं विषय-प्राप्ति की लालसा रखता हूं। मैं सुन्दर हूं। धनी हूं कुलीन हूं इत्यादि।

स्मरण रहे जाग्रत-अवस्था में आणव, मायीय और कर्ममल तीनों मल विद्यमान रहते हैं, इत्यतः जाग्रदवस्था में योगाभ्यास का फल कठिनाई से प्राप्त होता है-इसमें तो तीनों मलों को हटाना होता है तब कहीं स्वरूप लाभ होता है। स्वप्नावस्था में आणवमल और मायीयमल ही होते हैं कर्ममल का प्रभाव नहीं रहता। अतः इस स्वप्नावस्था में यदि योगाभ्यास किया जाये तो सहज में ही साधक तुर्यावस्था में प्रविष्ट होता है। अतः जहां तक हो सके निद्रा के प्रारम्भ में अभ्यास करने का प्रयास करना चाहिये।

सुषुप्ति अवस्था में गाढ निद्रा में पड़े रहने में साधक न तो स्वरूप में जाने की क्षमता रखता है और नहीं स्वप्न संसार में विचरण करता है। इस दशा में तीनों मल संस्कार रूप में ही ठहरे रहते हैं।

मायीयमल तथा कर्ममल को पुरुषार्थ के सहारे तथा बौद्धज्ञान के द्वारा दूर किया जा सकता है किन्तु आणवमल को हटाना जीव के अधीन नहीं है। स्वरूप-प्रथन का होना तो शक्तिपात से ही सिद्ध होता है। इस मल की व्याप्ति विज्ञानाकल तक रहती है। श्री प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के इस निम्न श्लोक में इस मल का निर्णय एवं किया गया है:

“स्वातन्त्र्य हानिर्बोधस्य

स्वातन्त्र्यास्याप्यबोधता।

द्विधाणवं मलमिदं

स्वस्वरूपापहानितः॥”

सुषुप्ति अवस्था और तुर्यावस्था के बीच में एक अवस्था आती है जिसका नाम विज्ञानाकल है। इस अवस्था में कर्ममल तथा मायीयमल पूर्ण रूप से संस्कार सहित नष्ट हुए होते हैं। केवल आणवमल ही विद्यमान रहता है। जब योगी विज्ञानाकल अवस्था का अनुभव करता है तो आणवमल के होने से उस योगी को स्वरूप प्रथनात्मक बोध तो रहता है पर उसे स्वतन्त्रता नहीं रहती वह अपने हाथ पैर हिला नहीं सकता। यदि वह हाथ पैर आदि कर्मेन्द्रियों को हिलायेगा तो उसे स्वरूप साक्षात्कार का बोध यानी अनुभव नहीं होता। यह अवस्था विज्ञानाकल की (स्वातन्त्र्यास्याप्यबोधता) इस ऊपर वर्णित कारिका के दूसरे चरण में कहीं गई है। “स्वतन्त्रः कर्त्ता” इस उक्ति के अनुसार यदि इस विज्ञानाकल की स्थिति में वह अपने शारीरिक अंगों को हिलायेगा तो वह अबोधता यानी आत्म-ज्ञान से वंचित हो जाता है।

इसके विपरीत कभी साधक विज्ञानाकल में प्रवेश करने पर स्वरूप साक्षात्कार का अनुभव तो करता है किन्तु तनिक मात्र भी कर्मेन्द्रियों को हिला नहीं पाता। वह स्वातन्त्र्य से वंचित हो जाता है। यही तात्पर्य ‘स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य, इस प्रथम चरण में वर्णित हुआ

है। किन्तु ध्यान रहे - यह स्वरूप साक्षात्कार रूप बोध अपूर्ण ही है। कारण यह है कि इस अवस्था में उसे स्वातन्त्र्य नहीं रहता। समाधि में प्रविष्ट होने के पूर्व यही विज्ञानाकल की स्थिति अनुभव की जाती है।

अब तात्पर्यतः ऊपर वर्णित श्लोक का अर्थ यह है : 'स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य' - स्वातन्त्र्य नहीं रहता केवल स्वरूप - साक्षात्कारात्मक बोध ही रहता है। उसे बोध पर आधिपत्य नहीं रहता। यह अवस्था उसे अपनी इच्छा से नहीं होती। वह इस दशा में शाप या अनुग्रह करने का सामर्थ्य नहीं प्राप्त कर पाता। यह अवस्था उसे केवल अपने कल्याण के लिए सीमित रूप में रहती है। विश्वव्यापक हितकार करने में लागू नहीं होती।

अब दूसरे चरण का अर्थ करते हैं - 'स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता'

नपे तुले शब्दों में इसका अर्थ यून है - स्वातन्त्र्य होने पर स्वरूप साक्षात्कार का बोध नहीं रहता। कहने का तात्पर्य यह है - योगी शाप अनुग्रह आदि करने पर आत्म ज्ञान से वंचित रहता है। इस भांति आणवमल के ये दो रूप योगी के स्वरूप प्रथन होने में बाधक बनते हैं।

अब शब्दार्थ इस प्रथम चरण का यह सिद्ध हुआ - शापानुग्रह रूप स्वातन्त्र्य न होना केवल आत्म-ज्ञान होना।

'स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता' अर्थात् शाप या अनुग्रह रूप कार्य करने पर स्वरूप बोध से हाथ धो बैठना। 'द्विधाणव मलमिदं स्वस्वरूपाप हानितः' यही दो प्रकार का आणव मल योगी की आत्म संवित्ति में विघ्न डालता है। प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में अभिनव जी ने यद्यपि इस ऊपर-वर्णित श्लोक का अर्थ विशद् रूप से समझाया है फिर भी इस श्लोक का रहस्यात्मक अर्थ क्या है - यह समझने के लिए मैंने एक दिन गुरुवर्य से प्रार्थना की। गुरुदेव आशुतोष तो थे ही - प्रार्थना करने पर पसीज गये तब भगवान ने अपने अनुभव के आधार पर इस का तात्त्विक अर्थ समझाया। जिज्ञासुओं के हित के लिए मैंने इसे मालिनी में लिखना युक्त समझा। वास्तव में आणवमल ही अन्य दो मलों की भित्ति है। इससे छुटकारा पाने के लिए प्रभु से सदा प्रार्थना करनी चाहिये। देहाभिमान का न होना प्रभु के पास पहुंचने का निकटतम साधन है। ऐसा आगम तथा गुरुजनों का आदेश है।

इति शम्

श्रीतन्त्रालोकविवेके श्रीजयरथाचार्यपादैः

स्तुताः योनिसमुद्भूताः जयाद्याः रुद्राः

भाषानुवादक

प्रो० मखनलाल कुकिलू

(गतांक से आगे)

श्री तन्त्रालोक विवेक के सत्ताइसवें आह्निक से सम्बद्ध “स्पृहण” नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर “य”

देवं चक्रव्योमग्रन्थिगमाधारनाथमजम्।

अपि परसंविद्रूढैः स्पृहणीयं स्पृहणमस्मिनतः॥

देवं - स्पृहण नामक रुद्र को

चक्र - सारे चक्रसमुदाय में, देवं - चमकीले बने हुए अथवा मातृका शब्दराशि चक्र या मालिनी शब्दराशि चक्र के पचास वर्णमाला को रुद्राक्षमाला पर चक्रवत् घूमने के ज्ञान की ज्वाला से चमकीले बने हुए। याद रहे मातृका शब्द राशि में ‘अ’ से ‘क्ष’ तक पचास वर्ण हैं। मालिनी शब्द राशि में भी ‘न’ से ‘फ’ तक पचास वर्ण हैं। मालिनी देवी का मूल मन्त्र है “हीं न फ हीं” मालिन्यै नमः और मातृका देवी का मूल मन्त्र है “हीं अक्ष हीं” मातृकायै नमः। वाक् तत्त्व की प्रतीक मातृका और मालिनी की वर्ण राशि है।

चक्र के विषय में आचार्य अभिनवगुप्त पाद ने कहा है कि आदिमान्त्य अर्थात् “अहं” में दोनों की एकता का प्रधान अङ्ग चक्र कहलाता है। इससे बढ़कर कोई दूसरी स्थिति आनन्द देने वाली नहीं होती। आचार्य जयरथ ने जो तन्त्रालोक जैसे महान् ग्रन्थ के टीकाकार हैं, चक्र शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है कि चक्र शब्द स्वात्मपरिष्कार परक अर्थात् अपने को परिपूर्ण करने में समर्थ, सब प्रकार से तर्पण करने के योग्य, सभी आवरणों को मिटाने वाला और सारी क्रियाशीलता का प्रत्यक्ष साक्षी है। अतः संस्कृतभाषा के नीचे दिये चार धातुओं से उन्होंने इस चक्र शब्द को समझाया है-

- (१) विकसति विकास्यते अनेन वा चक्रं अर्थात् “कसी विकासे” धातु के आधार पर या “चक तृप्तौ” धातु के आधार पर - चकति इति
- (२) चक्रं चक्यतेऽनेन वा इति चक्रं।
- (३) “कृती दहने” धातु के आधार पर कृन्तति सर्वान् विश्वपाशान् इति चक्रम्।
- (४) “कृ करणे” धातु के आधार पर करोति सर्वं इति चक्रम् ॥

इन चार प्रकार के उत्पन्न अर्थों से चक्र शब्द की महत्ता का पता लगजाता है।

व्योम - आकाश को कहते हैं। हमारे कश्मीर शैव दर्शन में एक विशिष्ट व्योम व्यापी

मन्त्र संरचना है जो स्वतः परिपूर्ण है। 'स्पृहण' नामक रुद्र का भी इस से संबन्ध है।

ग्रन्थिगम - प्रत्येक पर्व में व्याप्त

आधरनाथ - शेषनाग की तरह समस्त भूमण्डल का आधार

अजं - उत्पत्ति स्थिति संहार हीन।

परसंवित् रूढैः अपि - परासंवित् पर आरूढ उपासकों के द्वारा भी

स्पृहणीय - अभिलषणीय

स्पृहणं - स्पृहण नामक रुद्र को

अस्मिनतः - प्रणाम करता हूँ।

चक्रसमुदाय में प्रकाशशील, व्योमव्यापी समस्त भूमण्डल का आधार, उत्पत्ति, स्थिति संहार हीन, परासंवित् पर आरूढ बने हुए उपासकों के द्वारा भी अभिलषणीय स्पृहण नामक रुद्र को मैं प्रणाम करता हूँ।

श्री तन्त्रालोक विवेक के अठाईसवें आह्निक से सम्बद्ध "दुर्ग" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "र"

समयविलोप विलुम्पन भीमवपुः

सकल सम्पदां दुर्गम्।

शमयतु निर्गलं वो

दुर्गमभव दुर्गतिं दुर्गः॥

समय विलोप - समयाचार का भंग।

काम्य कर्म के साथ साथ नैमित्तिक कर्म में भी शुभग्रहयाग, (अर्थात् अच्छे कल्याणकारी ग्रहों तथा विशेष तिथि पर किया गया याग पर्वयाग कहा जाता है) अनुकूल माना गया है। ऐसा न करने से समयाचार के नष्ट हो जाने का भय उत्पन्न होता है। "समय विलोप" न हो, इसी उद्देश्य से शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि जो सर्वांग सुन्दर पर्व को नहीं जानते, अर्थात् पर्व में आचरणीय आचार प्रक्रिया से अपरिचित है, वे पशु समान हैं, क्योंकि समयाचार की सार्वजनिक उपयोगिता है।

विलुम्पन - अस्त-व्यस्त होना।

भीमवपुः - भयानक शरीर वाला।

सकल सम्पदा दुर्ग - सारी सम्पदाओं और सिद्धियों का अभेद्य स्थान।

दुर्गः - "दुर्ग" नामक रुद्र।

शमयतु - प्रशान्त करे

निरर्गल - बेरोकटोक, वो-आप सबकी,

दुर्गम - जिसे पार करना अतीव कठिन है,

भवदुर्गति - सांसारिक यातना और कठिनताओं को।

समयाचार के भंग होने में बाधक, भयानक शरीरवाला सारी सम्पदाओं का उत्पत्ति स्थान “दुर्ग” नामक रुद्र आप सबकी सांसारिक दुर्गति को, जिसे पार करना कठिन है, बेरोकटोक होके शान्त करे॥

श्रीतन्त्रालोक विवेक के उन्नतीसवें अह्निक से सम्बद्ध “भद्रकाल” नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्रक्षर “ल”

भद्राणि भद्रकालः कलयतु वः सर्वकालं अतुलगतिः।

अकुलपदस्थोऽपि हि मुहुः कुलपदमभिधावतीह प्रसभम्॥

भद्राणि - आध्यात्मिक व भौतिक कल्याणों को

भद्रकालः - “भद्रकाल” नामक रुद्र

कलयतु - सम्पूर्ण करें

वः - आप सब लोगों के

सर्वकालं - हर समय अर्थात् समय सीमा को बिना ध्यान में रखे।

अतुलगतिः - जिसकी गति की तुलना किसी से नहीं होती।

अकुल पदस्थोऽपि - अकुल पद पर ठहरा हुआ भी।

हि - निश्चय करके। मुहुः - बार बार। कुल पदं - कुलपद की ओर ही

अभिधावति - दौड़ता है। इह - इस मार्ग में प्रसभं - हठपूर्वक।

कुलपदं - कुल शब्द तन्त्रों में व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

कुल - परमशक्ति को कहते हैं अतः सबसे बड़ चढ़कर जो शक्ति हो उसे कुल कहते हैं। कुलका दूसरा अर्थ स्वातन्त्र्य है अर्थात् सर्वज्ञता, सर्वकर्तृता आदि षाड्गुण्य से विभूषित परमशिव ही कुल नाम से जाने जाते हैं। सबका कारण होने से तथा सबसे उपरि होने से कुल ऊर्ध्वता का ही पर्याय है। संहार और सृष्टि निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ होने से ‘कुल’ सामर्थ्य को भी कहते हैं। वह सामर्थ्य शिव ही है। परमशिव का परम भीषण तेज ओज शक्ति से विख्यात है। वह ओज भी कुल है। ‘कुल’ ही आत्म स्वरूप है। संक्ति तत्त्व ही आत्मतत्त्व है। कहा भी है - “कुलं आत्म स्वरूपं तु”। ‘कुलं शरीरं इत्युक्तं’ शरीर भी कुल रूप ही है। कुलज्ञान शिवशक्ति सामरस्य का समर्थक है।

वह भद्रकाल नामक रुद्र हर समय आप सबलोगों का कल्याण करे जिसकी गति

की तुलना किसी से नहीं हो सकती जो अकुल पद पर विराजमान होते हुए भी बारबार कुल पद की ओर ही गमनशील हैं।

श्री तन्त्रालोक विवेक के तीसवें आह्निक से संबद्ध “मनोनुग” नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर “व” -

सहज परामर्शात्मक महावीर्य सौध धौत तनुम्।

अभिमत साधक साधकमनोनुगं तं मनोऽनुगं नौमि॥

सहज परामर्शात्मक - पूर्णात्मक परविमर्श में अधिरूढ़ होने का भाव।

महावीर्य - महाशक्ति शाली

सौध धौत तनुम् - अमृत के समान श्वेत मूर्तिवाले

अभिमत - अभीष्ट को, साधक - सिद्ध करने वाले साधक - किसी भी भक्तिमान् के, मनोऽनुगं - मानसिक अभिलाषा के अनुकूल, तं - उस

मनोनुगं - “मनोनुग” नामक रुद्र को। नौमि - प्रणाम करता हूँ।

सहज परामर्शात्मक - मन्त्रार्थ में अनुप्रवेश के लिए पूर्णात्मक परविमर्श में जाना अतीव आवश्यक है। यह नियम सभी साधकों के लिए यद्यपि आवश्यक है फिर भी सभी के लिये यह मार्ग सुकर नहीं है। वास्तव में मन्त्रों का निरूपण पूर्ण-परविमर्श आरोह सिद्धि के लिए किया गया है। साधक पूर्णाहन्ता परामर्श के ऊर्ध्वगामी स्तर पर आरूढ़ हो- इसी उद्देश्य से मन्त्र प्रकाश में आये हैं।

साधक (aspirants) तीन प्रकार के होते हैं।

- (१) अनुसंधित्सु - जो पूर्ण परामर्श के अनुसंधान के इच्छुक हों
- (२) आरुरुक्षुः - जो पूर्ण पर विमर्श में अधिरूढ़ होने की इच्छा रखते हों।
- (३) पूर्णात्मकपर विमर्शाधिरूढ़ - जो पूर्ण स्वरूप वाले परविमर्श पर समासीन हों।

पूर्णपरविमर्श पर अधिरूढ़ होने के लिए महाशक्तिशाली, अमृत तुल्य श्वेत शरीरवाले, मन के अनुकूल साधक की इच्छा सिद्धि प्रदान करने वाले उस “मनोऽनुग” नामवाले रुद्र को मैं प्रणाम करता हूँ।

याद रहे मातृकाचक्र का “व” वर्ण इस रुद्र की प्रसाद प्राप्ति का मन्त्राक्षर है।

शैवदर्शन के वातायन से

नीलकण्ठ गुट्ट

सङ्क्रान्ति:- कारुणिक गुरुजन के द्वारा समझाई जाती हुई शास्त्रीय बातों का शिष्य के आंतरिक हृदयपटल पर स्पष्ट संक्रमण होने को शास्त्रीय शब्दों में संक्रमण या सङ्क्रान्ति कहा जाता है।

दृक्-क्रिया - परमेश्वर में अभिन्न रूप में सदा वर्तमान रहने वाली ईश्वरीय ज्ञान-शक्ति एवं क्रिया शक्तियों को दृक्क्रिया शब्द से अभिहित किया जाता है।

अभिसंधि:- निजी अन्तर्हृदय का गहरा अनुसंधान अभिसंधि: कहा जाता है।

प्रत्यभिज्ञान - अतिगम्भीर अभिसंधि से अन्तर्हृदय में स्वयं उत्पन्न होनेवाले ज्ञान को ही स्वरूप ज्ञान या प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है।

समस्त संपत् - विश्वभर की समूची नील रूपिणी या सुखरूपिणी प्रमेय-संपदा को 'समस्त संपत् - अर्थात् समूची ईश्वरीय संपदा माना जाता है।

अन्यवेद्य - जो प्रमेय पदार्थ प्रमाता को स्वरूप से भिन्न रूप में बोध के विषय बन जाते हैं। उनको अन्यवेद्य या भिन्नवेद्य कहा जाता है। यहां पर यह बात ध्यान में रखने की बहुत आवश्यकता है कि प्रायः विचारक लोग सारे प्रमेय विश्व को परमात्मा से भिन्न रूप में ही समझते हैं परन्तु भगवान् उत्पलदेव स्वयं कोई भी पदार्थ अन्यवेद्य नहीं समझते थे - अन्य वेद्यमणुमात्रमस्ति न, स्वप्रकाशमखिलं विजृम्भते (उत्पल)

स्वस्वरूप - अनन्त प्रकारों वाली एवं अनन्त विच्छेदों वाली समूची इदन्ता का ही मूलभूत कूटस्थ रूप स्वस्वरूप कहलाता है और उसी को मौलिक पर प्रमातृता माना जाता है।

मायाशक्ति:- चिदानन्दधन परमेश्वर की स्वयं सिद्ध स्वातन्त्र्यशक्ति माया शक्ति कही जाती है। जिसके द्वारा वे अपना ईश्वरीय पंचकृत्य संपन्न कर लेते हैं।

विगलितवेद्यान्तरता - उच्च कोटि के साधको में पाई जानेवाली ऐसी तीव्रतम एकाग्रता का भाव जिसके प्रभाव से उनमें स्वरूप विमर्श को छोड़कर और किसी भी वेद्यता का भाव पूर्णतया गला हुआ होता है।

अर्थ-क्रिया - किसी भी प्रमेय पदार्थ से जो प्रयोजन और जैसी क्रिया सिद्ध होते हों

उनको उस पदार्थ की निश्चित अर्थ क्रिया कहा जाता है। हरेक प्रमेय पदार्थ से कोई न कोई प्रयोजन (अर्थ) और किसी न किसी प्रकार की क्रिया सिद्ध होते रहते हैं।

जड-प्रमेय - ऐसे प्रमेय-पदार्थ जिनमें ज्ञातृता एवं कर्तृता का अभाव हो, जडप्रमेय कहे जाते हैं।

उच्छन्नता - बहिर्मुखीन सृष्टि-प्रक्रिया में उत्तरोत्तर स्थूलता को स्वीकारते रहने की प्रवृत्ति।

शिवा - हलैल की मूर्च्छा को 'शिवा' कहते हैं। ईश्वर प्रत्यभिज्ञा में इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

मेधा की महिमा

(Excellence of Intuitional intelligence)

— प्रो० मखनलाल कुकिलू

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीताजी में कहा है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्॥

ददामि बुद्धियोगं तं येन मां प्रापयन्ति ते॥

अर्थात् हमेशा मेरे ध्यान में लगे हुए प्रेमपूर्वक मेरा भजन करने वाले भक्तों को मैं “बुद्धियोग” सूक्ष्मबुद्धि जिसका दूसरा नाम मेधा है, प्रदान करता हूँ जिससे वे मुझे अपने पास पहुंचाते हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने ‘बुद्धियोग’ का महत्त्व सरल शब्दों में बताकर सामान्य जनता को इस ओर आकर्षित किया है। बुद्धियोग - सूक्ष्मबुद्धि का दूसरा नाम है। सूक्ष्म बुद्धि को ही वैदिक ऋषियों ने “मेधा” नाम से अभिहित किया है। मेधा ही कुशाग्रबुद्धि है। कुशाग्रबुद्धि का तात्पर्य उस सूक्ष्मबुद्धि से है जो कुशाघास के नोक के समान तेजधारवाली हो। स्मरण रहे कि कुशा घास का अगला भाग या सिरा इतना तीव्र होता है कि अनजाने में यदि हाथ लग जाये तो हाथ क्षत-विक्षत होता है। इसी प्रकार ‘मेधा’ उस कुशाग्र बुद्धि का नाम है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचन करने की क्षमता रखती है। जो ग्राह्य या अग्राह्य धर्म या अधर्म, पाप या पुण्य, सुख या दुःख, राग या बैर, मान या अवमान, शुभ या अशुभ बन्धमोक्ष, और लाभ या हानि की वास्तविकता का ज्ञान कराकर कटिबद्ध रहने को प्रेरित करती है। अतः मेधा को ही प्रमुख वैदिक ऋषियों ने अर्चा है पूजा है मेधा की विशिष्टता को ही ध्यान में रखकर यजुर्वेद में मेधा की महिमा का गान इस प्रकार किया गया है—

(१)

मेधां मह्या अंगिरसो मेधां सप्तर्षयो ददुः।

मेधां अग्निश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे॥

अंगिरस वायु अर्थात् प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान नामक शरीर में व्याप्त रहने वाले पांच प्रकार के वायु मुझे मेधा अर्थात् कुशाग्री बुद्धि को प्रदान करें। मरीचि, अग्नि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ नामक सप्तर्षि मुझे मेधा प्रदान करें। अग्नि देवता और वायु देवता मुझे मेधा से शोभित करें। धाता अर्थात् सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा भी मुझे मेधा प्रदान करे।

विशेष - अंगिरसः - अंगानि रसयन्ति इति आन्तरा वायवः अंगिरसः अर्थात् शरीर के सारे अंगों को जो परिपुष्ट करते हैं उन पांच प्राण वायुओं को 'अंगिरस' कहते हैं।

(२)

मेधा में वरुणो राजा मेधां अग्निः ददातु मे।

मेधां इन्द्रश्च सूर्यश्च मेधां देवी सरस्वती॥

अर्थात् जलाधिष्ठित देवता राजा वरुण मुझे कुशाग्र बुद्धि प्रदान करे। सर्वत्र व्याप्त अग्निदेव मुझे मेधा से प्रज्ज्वलित करे। इन्द्रदेव जो वर्षाधिपति तथा सूर्यदेव जो समय के कर्ता है, मुझे मेधा का प्रसाद प्रदान करें। वाणी की महाराज्ञी वाग्देवी सरस्वती मुझे मेधा से अनुगृहीत करे।

(३)

या मेधा अप्सरसु गन्धर्वेषु च यन्मनः।

दैवी मनुष्ये या मेधा सा माम आविशतात् इह॥

अप्सराओं में जो तीक्ष्ण बुद्धि है, गन्धर्वों में जो अन्तःकरण है, सारे वेदों की ऋचाओं व सूक्तों (hymns) में विद्यमान रहस्यार्थ की साक्षात्कारिणी जो मेधा ज्ञानियों में पाई जाती है, इस लोक में वह संपूर्ण रूप से मुझ में प्रवेश करें।

विशेष - अप्सरसः - अप्सु - जल में, सरन्ति इति फिरती रहती हैं वे रूप विशेषवाली कान्तिमती योगिनियां अप्सरायें कही जाती हैं गन्धर्व - गां-स्वर्ग, धारयन्ति यज्ञ संपत्तिद्वारेण इति गन्धर्वा अर्थात् जो यज्ञ संपत्ति से युक्त होके स्वर्ग को धारण करते हैं वे गन्धर्व नाम से पुकारे जाते हैं।

“मन” से अन्तःकरण यहां अभिप्रेत है।

“देवी” यह शब्द वेदों के रहस्यपूर्ण तात्पर्य की साक्षात्कारिणी “मेधा” का विशेषण है।

माम् - इस मेधा स्तुति: के अभ्यास करने वाले साधक के शरीर में।

आविशंतात् - चारों ओर से प्रवेश करे।

(४)

शरीरं मे विचक्षणं वाङ् मे मधुमद् दुहे।

निशामितं निशामये मयि श्रुतम्॥

मेरा शरीर विद्वत्ता से परिपूर्ण हो, मेरी वाणी वेदाध्ययन और अभिज्ञान रूपी सुन्दर और मधुर फल को दोहन करें। जो कुछ श्रुतिसम्बन्धी ज्ञान मुझ में स्थित है और जिसका मैंने चिन्तन किया है उसका भलीभांति मैं चिन्तन करता रहूँ।

विशेष - विचक्षणं - चातुर्य से लबालब

वाक् - वेद रहस्यार्थ प्रकाशिनी माधुर्य भावपूर्ण वाणी, निशामितं - चिन्तन किया है।

निशामये - भलीभांति चिन्तन करूँ।

(५)

यन्मेऽनूक्तं तद् रमतां शकेय यद् अनुब्रवे।

प्रियाः श्रुतस्य भूयास्म मेधया संविधीमहि॥

जो कुछ मुझे अपने सद्गुरु महाराज ने कहा है वह मेरे रोम रोम में रमन करे। जो कुछ सद्गुरु महाराज ने उपदेश के रूप में मुझे दिया है वह मैं सबको समझाने में समर्थ हो सकूँ। मेधा की महिमा से जो कुछ मैंने सुना या जो कुछ वेदार्थ सम्बन्धी ज्ञान मैंने प्राप्त किया, वह ज्ञान अन्त तक मुझमें रहे। हम सदा मेधा देवी की कृपा से आविष्ट होवें।

मेधा देवी का यह स्तोत्र कितना आकर्षक है, कितना वाञ्छनीय है और कितना अनुसरणीय है यह इस स्तोत्र के अर्थगांभीर्यपूर्ण शब्दों से स्पष्ट होता है। वैदिक ऋषियों ने इस स्तोत्र की महिमा का गान करते हुए कहा है कि जड़ व्यक्ति भी इस स्तोत्र के मनन करने से प्रज्ञावान् बनता है, कुशल व्यक्ति शास्त्र पारंगत होता है, विद्यार्थी अधीत (पढ़ी हुई विद्या को) कभी भूलता नहीं है, तत्त्वज्ञानी सदा स्वरूप स्थित रहता है शास्त्रार्थ इच्छुक कभी किसी से पराजित नहीं होता है, अनपढ़ व्यक्ति विचक्षण बनता है अभ्यासी मातृका शक्ति का कृपा पात्र बनता है और साधक स्तुति जपार्चन चिन्तन में दत्तचित्त रहता है।

विद्यार्थी वर्ग से विशेष आग्रह है कि प्रातः सायं इस मेधा स्तोत्र का भक्ति से अध्ययन करें और इसके चमत्कार से चमत्कृत होवें। वैदिक काल से प्रचलित यह मेधा सूक्त ऋषियों का सर्वप्रिय है। इसका मनन, चिन्तन, स्मरण व अध्ययन सर्वाशापूरक है। ऐसी गुरुजनों की आज्ञा है।



ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Srinagar Ashram:

Ishber Nishat,

P.O. Brain,

Srinagar (Kashmir) - 190 021

Tel. : 0194-461657

Jammu Ashram:

2. Mohinder Nagar,

Canal Road,

Jammu (Tawi) - 180 002

Tel. : 0191-553179, 555755

Delhi Ashram:

R-5, Pocket 'D',

Sarita Vihar,

New Delhi - 110 004

Tel. : 011-6958308, 6943307

(1)

Jammu, 16th April, 2002

The Trust and the devotees of Guru Maharaj were shocked to learn about the sad demise of Mrs. Ghasi, sister of Shri Pran Nath Razdan, a devoted disciple of Swami Ji Maharaj, at Delhi. The deceased who was the mother of Shri Ramesh Ghasi, was also very much devoted to Gurudev.

The gathering prayed to Swami Ji Maharaj to lead her soul to eternal solace and give enough strength to the bereaved family to bear this great loss.

It was also desired that these sentiments be conveyed to all the concerned.

Sd/-

(B. N. Kaul)

Trustee

(2)

Jammu, 28th April 2002

The disciples, devotees and trustees present in the hall after Sunday prayers to condole the death of the eldest daughter of Smt. Dhanvati Badam, who is an ardent disciple of Gurudev prayed to him to shower His bliss to the departed soul and to bestow enough courage to the bereaved family and especially Smt. Badam for whom it is most shocking at this age.

It was desired that these sentiments be conveyed to Smt. Dhanvati Badam and her family.

Sd/-

(S.N. Saproo)

Administrator

(3)

Jammu, 28th April, 2002

Respected Gurtu Sahib,

The Disciples, devotees and the Trust members- Shri I.K. Raina and B.N. Kaul, were shocked to learn about the sad and untimely demise of your daughter in law, Smt. Asha Ji on 18th of April, 2002.

After Sunday Pooja today, they assembled in the hall and prayed to Gurudev for the upliftment of her soul and to give you people enough courage to bear this loss which is so unbearable. May he lead the departed soul to the region of truth and light.

The gathering was aware of the fact that it would be futile to try to say anything to a noble and elevated soul like you as that would tantamount to putting a lamp before the Sun. The only alternative left is to pray for the courage of the bereaved family.

Yours sincerely,
for Ishwar Ashram Trust,

Sd/- I. K. Raina
Secretary

(4)

Jammu, 26.05.02

The disciples and devotees of Gurudev Ishwar Swaroop Shri Lakshman Joo Maharaj were shocked to learn about the sad and untimely demise of Smt. Raj Dulari Kokiloo, W/o Shri R.K. Kokiloo and sister-in-law of Sri M.L. Kokiloo, the editor of Malini Journal and a devout disciple of Gurudev.

They assembled after the Sunday prayers and prayed to Swami Ji Maharaj to lead her soul to the region of Light & Peace to which it has entered and to give enough courage to the bereaved family to bear this great shock.

It was also desired that these sentiments be conveyed to the concerned.

Sd/-
(B.N. Koul)
Trustee

(5)

Jammu, 26.05.02

The devotees and disciples of Gurudev Shri Ishwar-Swaroop Swami Lakshman Joo Maharaj were very much shocked to learn about the sad demise of Shri Dina Nath ji Pandita, an ardent disciple of Swami Ji Maharaj, a few days back.

They assembled after the Sunday prayers today and prayed to Gurudev to shower his bliss to the departed soul and give enough courage to the bereaved family to bear this great shock.

It was desired to communicate these sentiments to all the concerned.

Sd/-

S.N. Sapro

(Administrator)

(6)

Jammu, 30.05.02

Whole of Guru-parivar, on learning that Shri S.L. Koul a pious man as he was, and father of Smt. Kshema Ji Razdan (W/o Shri Lal Ji Razdan) has attained peaceful end, prayed to Shri Gurudev Swami Lakshman Joo Maharaj to bestow peace to the departed soul and lead it to the region of Light and peace it has entered and to give enough courage to the bereaved family to have tolerance to bear this great loss.

It was desired that these sentiments be conveyed to the concerned.

Sd/-

(B.N. Koul)

Trustee

(7)

Jammu, 14th July, 2002

Whole of Guru-parivar, on hearing sad and untimely demise of Shri Nath Ji Dral, an ardent Sadhak of Trika philosophy, an ardent devotee of our Gurudev, Swami Ji Maharaj who loved him very much, assembled in the Hall after Sunday pooja to mourn his death.

The devotees observed silence for two minutes, praying Gurudev to shower Bliss to his soul and lead his soul to the region of light and peace to which it has entered, also to give enough courage to his near and dear ones.

It was also desired that these sentiments be conveyed to his guru brothers and friends.

Sd/-
(S.N. Saproo)
(Adm inistrator)

(8)

Jammu, 14th July, 2002

Whole of the Guru-parivar assembled in the hall to mourn the death of Smt. Radhika Rani Razdan W/o Shri Radhey Nath Razdan, who left her body a few days back and who was very much devoted to Gurudev from a very long time.

The gathering prayed to Gurudev to bestow peace to the departed soul and give enough courage to the family to bear this great loss. Silence was also observed for two minutes.

Sd/-
(S.N. Saproo)
Administrator

N.B. : *Similar condolence meetings were held on all the stipulated dates at Srinagar and Delhi Ashrams also and two minutes silence was observed for the upliftment of departed souls. May Sadguru Maharaj bestow on them eternal peace and relieve them from the pangs of life and death.*

MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs.100.00

Price Per Copy : Rs.25.00

Overseas Subscription : US\$25.00

All correspondence & subscription must be sent to the Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180 002.

Tel. : 553179, 555755

Information regarding printing & publishing, etc. can be had from Branch Office:

F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044

Phone : 6943307